जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष - ६० अंक - ३
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १००) रु०
आजीवन - १०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

फाल्गुन-चैत्र : सम्वत् २०७४ वि० मार्च – २०१८

पं० शिवाकान्त जी उपाध्याय (पृष्ठ १३ पर)

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

महर्षि महिमा पर्व

कोलकाता एवं हावड़ा की समस्त आर्यसमाजों की ओर से महर्षि महिमापर्व १० फरवरी से १४ फरवरी २०१८ तक आर्यसमाज हावड़ा के संयोजकत्व में मनाया गया । इस अवसर आचार्य चन्द्रदेव जी द्वारा आर्य समाज हावड़ा में प्रतिदिन प्रात: यज्ञ एवं प्रवचन तथा आर्य समाज कलकत्ता में प्रतिदिन सायं ७.३० बजे से ८ बजे तक श्री श्यामानन्दजी द्वारा भजन एवं ८ बजे से ८.४५ तक आचार्य चन्द्रदेव शास्त्री जी द्वारा महर्षि स्वामी दयानन्द जी के कार्यो एवं अवदानों पर विस्तार से चर्चा की । दिनांक १४ फरवरी को सायं ४ बजे से हावड़ा के सलकिया अवस्थित श्री राम वाटिका में ऋषि बोधोत्सव के अवसर पर बहुकुण्डीय व बहुपारिवारिक यज्ञ का आयोजन किया गया । यज्ञ का संचालन आचार्य राहुलदेव शास्त्री जी ने किया । इस अवसर पर आर्य परिवार अपने अपने यज्ञ कुण्ड के साथ बहुकुन्डीय यज्ञ हेतु उपस्थित हुए । यज्ञ के उपरान्त आचार्य चन्द्रदेव जी की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन हुआ जिसमे परे वेदप्रकाश शास्त्री, पं० वेदभानु जी, पं० देवव्रत तिवारी, आचार्य राहुलदेव शास्त्री, प० देवनारायन तिवारी, तथा आचार्य चन्द्रदेव शास्त्री जी ने महर्षि अवदानों पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये । कार्यक्रम के अन्त में प्रीतिभोज का आयोजन हुआ ।

वासन्तीय नवसस्येष्टि यज्ञ - आर्यसमाज कलकता में १ मार्च २०१८ को सायं ४ बजे से नवसस्येष्टि यज्ञ (होलिकोत्सव) मनाया गया । जिसमें प० देवनारायण तिवारी जी द्वारा नवसस्येष्टि यज्ञ सम्पन्न करवाया गया । तदुपरान्त आयोजित सभा में प० कृष्णदेव शास्त्री, पं० देवव्रत तिवारी, श्री श्रीराम आर्य, श्री चाँदरतन दम्माणी तथा पं० देवनारायण तिवारी जी द्वारा होलिकोत्सव के वास्तविक स्वरूप का विशद वर्नन किया तथा कविता पाठ भी हुए ।

शुद्धि समाचार

१ अजमीरा खातून पुत्री श्री अताउल रहमान, आयु २५ वर्ष ने दिनांक ४-९-२०१७ को आर्य समाज कलकत्ता में इस्लाम मत त्यागकर स्वेच्छा से वैदिक धर्म स्वीकार किया । शुद्धि संस्कार पं० मधुसूदन शास्त्री जी के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ । शुद्धि संस्कार के पश्चात् इनका नाम अन्जलि चक्वर्ती रखा गया ।

२ शमरीन सत्तार पुत्री श्री अब्दुल सत्तार, आयु ३३ वर्ष ने आर्यसमाज कलकत्ता में दिनांक २९.९. २०१७ को इस्लाम मत त्यागकर स्वेच्छा से वैदिक धर्म स्वीकार किया । शुद्धि संस्कार पं० देवव्रत तिवारी जी के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ । शुद्धि के पश्चात् इनका नाम शमरीन रवीन्द्र रखा गया ।

३. मुफ्ती नूरबानू पुत्री मुफ्ती नुरुल आमीन, आयु ३१ वर्ष ने आर्य समाज कलकत्ता में दिनांक २९-१-२०१८ को इस्लाम मत त्यागकर स्वेच्छा से वैदिक धर्म स्वीकार किया । शुद्धि संस्कार पं० देवव्रत तिवारी जी के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ । शुद्धि संस्कार के पश्चात् इनका नाम अनुराधा सेन रखा गया ।

(शेषांष पृष्ठ २१पर)

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ६० अंक — ३
फाल्गुन-चैत्र २०७४ वि०
दयानन्दाब्द १९४
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११८
मार्च — २०१८

आद्य सम्पादक
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

शुल्क : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

इस अंक की प्रस्तुति

१. आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ		२
२. इस अंक की प्रस्तुति		३
३. जैसी करनी वैसी भरनी (६१)	वेद-वीथिका से	४
४. स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र	पं. लेखराम द्वारा संकलित	७
५. सत्यार्थ प्रकाश काव्य-सुधा (महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश का काव्यानुवाद)	पं. देवनारायण तिवारी	१०
६. पं० शिवाकान्त जी उपाध्याय		१३
७. "संस्कृति -विमर्श"	देव नारायण भारद्वाज	१४
९. शिवरात्रि से दयानन्द में परिवर्तन	डॉ० रवीन्द्र कुमार शास्त्री "सोम"	१८
९. योग विज्ञान की प्रासंगिकता	परीक्षित मंडल 'प्रेमी'	२२
१०. आर्य शब्द पर वाद विवाद क्यों ? यह अपवाद है । आर्य जातिवाचक शब्द नहीं है, अपितु गुणवाचक शब्द है ।	पं० उम्मेद सिंह विशारद	२५

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६

दूरभाष : २२४१-३४३९ **email : aryasamajkolkata@gmail.com**

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है ।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा ।

६१

जैसी करनी वैसी भरनी

न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति, न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत्, पक्तारं पक्वः पुनराविशाति ।।

अथर्व १२-३-४८

शब्दार्थ :-

न किल्विषम्	= त्रुटि, कमी नहीं	अनूनम् =	पूर्ण, न्यून नहीं
अत्र	= यहां, प्रभु के न्याय में	पात्रम् =	पात्र
न आधारः	= न सहारा, सिफारिश	निहितम् =	सुरक्षित है
अस्ति	= है	नः =	हमारा
यत्	= जिससे	एतत् =	यह
मित्रैः	= मित्रों के साथ	पक्तारम् =	पकाने वाले को
सम् अममानः	= साथ चलकर	पक्वः =	पकी वस्तु
एति	= पहुंचता है	पुनः =	फिर से
		आ विशाति =	अच्छी तरह मिलती है

भावार्थ :-प्रभु के न्याय में न त्रुटि है, न सिफारिश है, न किसी की मित्रता काम आती है । वहां सुकर्म करने वाले को परिपूर्ण पात्र पुनः प्राप्त हो जाता है ।

विचार विन्दु :

१. प्रभु के नियम शाश्वत हैं । **२. कर्म फल में सिफारिश नहीं चलती ।**
३. प्रभु परिपूर्ण, अन्यून देते हैं । **४. कर्म फल पुनः पर जन्म में मिलता है ।**

व्याख्या

कर्म फल का नियम बड़ा प्रसिद्ध है–

'अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम् ।'

प्रस्तुत मंत्र में जीव के कर्मों के फल का वर्णन है ।

प्रभु के नियम शाश्वत हैं । उन नियमों के अनुसार चल कर मनुष्य सदा उन्नति करता है और सुखी

रहता है । हर कार्य के नियम हैं । स्वास्थ्य के नियम, अध्ययन के नियम, कृषि के नियम, धन-कमाने के नियम, सभी कार्यों की व्यवस्था है । मंत्र कहता है कि प्रभु हमारे कर्मों के अनुसार हमको अपने कर्मों का फल देते हैं, न कम न अधिक । एक कवि ने कहा हैं —

'मेरे दाता के दरबार में, सब लोगों का खाता ।
जो कोई जैसी करनी करता, वैसा ही फल पाता ।।
किसी को कौड़ी कम नहीं मिलती, मिले न पाई ज्यादा ।
चले न उसके आगे रिश्वत चले नहीं चालाकी ।।'

मंत्र में कहा है कि प्रभु के नियमों में कोई त्रुटि या भूल नहीं खोजनी चाहिए । त्रुटि हमारे काम करने में होती है । जब हम यत्न करते हैं और सफलता नहीं मिलती तो खोजना चाहिए कि हमसे भूल कहां हुई, यदि भूल न हुई होती तो सफलता अवश्य मिलती ।

'यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति, कोऽत्र दोष: ।'

यह सूक्ति शिक्षा देती है कि यदि यत्न करने पर भी कार्य सिद्ध नहीं हुआ तो खोजना चाहिए कि हमारे यत्न में त्रुटि कहां रह गई ।

हमारे कर्म फल में कोई सिफारिश भी नहीं चलती है । कई लोग पाप क्षमा की बात करते हैं । कोई कहता हैं - गंगा में नहाने से पाप कट जायेंगे, कोई कहता है - चरणामृत लेने से पाप कट जायेंगे । मुसलमान रोजा रखकर और ईसाई ईसामसीह पर विश्वास करने से पाप कट जाना मानते हैं । किन्तु शास्त्र कहते हैं -

'अश्वयमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।'

अर्थात् शुभ या अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा । भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं -

'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन ।'

अर्थात् कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल तो परमेश्वर की ओर से मिलता है ।

मंत्र में कहा है कि कर्म-फल में किसी की मित्रता भी काम नहीं आती । कोई साधु,संत, औलिया, फकीर कोई भी कर्म-फल में हमारी सहायता नहीं कर सकते । प्रभु के नियम पूर्ण हैं । वे पूरा-पूरा देते हैं । किसी के कर्मों के फल का पात्र अधूरा नहीं रहता । अच्छा, बुरा सब को पूरा-पूरा प्राप्त होता है । हमें केवल अपने कर्मों को सुकर्म बनाकर प्रभु-भक्ति करनी चाहिए । भक्ति का अर्थ होता है — भगवान् का भजन करना और उन्हीं पर समर्पित हो जाना । कहते हैं - भक्ति दो तरह होती हैं, एक मर्कट की तरह होती है, दूसरी मार्जार भक्ति । मर्कट बन्दर को कहते हैं । बन्दर का बच्चा अपनी मां के साथ चिपट जाता है और मां भागे-दौड़े, इस डाल से उस डाल पर छलांग लगावें, बच्चा मां को नहीं छोड़ता । यह मर्कट-भक्ति है । इसी प्रकार भक्त भी अपने भगवान् को सर्वात्मना पकड़ लेता है और सुख हो या दुःख, वह भगवान् के आश्रय को नहीं छोड़ता। उसे प्रभु पर निश्चल आस्था है ।

भक्ति का एक और रूप है — मार्जार भक्ति । मार्जार कहते हैं - बिल्ली को । बिल्ली अपने बच्चे को अपने मुंह में उठा लेती हैं और बच्चा बिल्ली के समर्पित हो जाता हैं । बिल्ली भागे, दौड़े, छलांग लगायें, हर हालत में बिल्ली अपने बच्चे को अपने मुंह से पकड़े रहती हैं । भगवान् भी अपने भक्त को

त्यागते नहीं हैं । प्रभु भी अपने भक्त को अपनाकर रखते हैं । भक्त को केवल समर्पण करना चाहिए –

'राजी है हम उसी में जिसमे तेरी रजा हो ।'

हम प्रत्येक अवस्था में प्रसन्न रहें जो कुछ प्रभु दें हम उसी में प्रसन्न रहें । सब प्रभु का प्रसाद है ।

मंत्र में अन्तिम बात यह कही कि सुकर्म करने वाले को पुनः परिपूर्ण प्राप्त हो जाता हैं । उसमें कोई कमी नहीं होती । एक प्रसिद्ध नियम हैं –

पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ।।

परमेश्वर पूर्ण हैं, उनकी व्यवस्था पूर्ण हैं । उस व्यवस्था में कर्म-फल भी पूर्ण ही मिलता है । इस जन्म में न सही अगले जन्म में अवश्य मिलता हैं । जिसने कर्म परिपक्व किया हैं उसे परिपूर्ण पात्र पुनर्जन्म में पुनः मिल जाता है । किन्तु हमारे कर्मों का फल पूर्ण रूप से हमें मिलता हैं ।

●

कृतज्ञताज्ञापन

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधिसभा एवं डी.ए.वी. कालेज प्रबन्ध कर्त्री समिति द्वारा जयपुर (राज०) में आयोजित महात्मा हंसराज जयन्ती पर अध्यक्ष पद्मश्री पूनमसूरी द्वारा आर्यरत्न देवनारायण भारद्वाज को वैदिक विद्वान स्वरूप सम्मानित किया गया जिसे उन्होंने अलीगढ़ में सम्पन्न समारोह के मध्य अपने शुभचिन्तक स्नेही, श्रोताओं पाठकों एवं सम्पादकों को समर्पित कर कृतज्ञता व्यक्त की ।

भवदीया–
श्रीमती दर्शनदेवी (प्रधान)
स्त्री आर्य समाज वैदिक आश्रम अलीगढ़ (उ.प्र.)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन वृत्त

अध्याय–१

पुष्कर के मेले का वृत्तान्त

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी को गुजरात में सम्वत् १८८१ में हुआ था । पूरे भारतवर्ष में स्वामी जी का जन्म दिवस मनाया जाता है । इसी अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता ने निर्णय किया कि पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं आर्य महामहोपदेशक कविराज श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा अनूदित महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र धारावाहिक प्रकाशित किया जाय, इसी श्रृंखला में प्रस्तुत है यह धारावाहिक जीवन-चरित्र — सम्पादक

(गतांक से आगे)

अध्याय - २

गंगा नदी के तट पर सात वर्ष का जीवन

(फाल्गुन शुदी १, सं० १९२३ से स० १९३० तदनुसार १२ मार्च, १८६७ से सन् १८७३ ई० तक)

विजय का सूत्रपात

अम्बादत्त वैद्य से शास्त्रार्थ, प्रायश्चित्त तथा ब्राह्मणों और क्षत्रियों का सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार - उन दोनों पंडितों ने नन्दकिशोर उपाध्याय कर्णवास वाले से कहा कि पंडित अम्बादत्त वैद्य अनूपशहर निवासी को बुलाकर उनसे शास्त्रार्थ कराया जाय । तब तो भले ही अर्थ सिद्ध हो, नहीं तो किसी अन्य (दूसरे व्यक्ति) से कुछ नहीं होगा । यह सुनकर उन्होंने पंडित अम्बादत्त जी को बुलाया और स्वामी जी से संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ । पंडित अम्बादत्त जी ने स्वामी जी महाराज के कथन को स्वीकार कर कहा कि श्री पंडित हीरावल्लभ जी पर्वती जो ऋग्वेदपाठी और व्याकरणी हैं, वे इन बातों को मान लें तो निश्चय हो जाये । परन्तु पंडित अम्बादत्त जी की व्यवस्था देते ही और ढंग हो गया। हम ठाकुर लोग स्वामी जी से प्रार्थी हुए कि जो कर्म बतलाया जाये उसे करने को (हम) उद्यत हैं । स्वामी जी महाराज ने हम लोगों में जिनकी आयु अधिक थी, उनको प्रायश्चित् करने को कहा और सब का यज्ञोपवीतसंस्कार कराने की आज्ञा दी । स्वामी जी की आज्ञानुसार अनूपशहर, दानपुर, कर्णवास, अहमदगढ़, रामघाट, जहाँगीराबाद से अनुमानतः चालीस के लगभग विद्वान् ब्राह्मण गायत्री का जाप करने के लिए बुलाये गये और जप आधे शुक्लपक्ष तक पूरा हुआ । तदुपरान्त वहीं स्वामी जी की कुटिया पर कुंड बनाया गया और अनूपशहर के दर्शनी (दर्शनों के विद्वान् ?) व पर्वती कर्मकांडी वेदपाठी ब्राह्मणों को

ब्रह्मा, होता ऋत्विज आदि बनाकर यज्ञ प्रारम्भ हुआ और सबको उसी यज्ञ में यज्ञोपवीतसंस्कार के पश्चात् गायत्री मंत्र का उपदेश दिया गया । उस यज्ञ में (यज्ञोपवीत लेने वाले) केवल मिट्ठनलाल विद्यार्थी,पंडित टीकाराम शास्त्री जी का भाई, ब्राह्मण थे; शेष सब लोग क्षत्रिय थे अर्थात् श्रीमान् ठाकुर गोपालसिंह व उनके भाई ठाकुर कृष्णसिंह जी व रघुनन्दनसिंह जी और उनके पुत्र खूबसिंह जी व भूमसिंह जी और ठाकुर खोडरसिंह जी, ठाकुर दीवान जी, तोताराम व इन्द्रसिंह, कैथलसिंह जी, हरिमाया, मुन्शी गोपालसिंहजी शानी और मैं अर्थात् ठाकुर शेरसिंह, संस्कृत हुए (हमारा संस्कार हुआ)। यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञशेष बांटा गया और हम सबने अपनी सामर्थ्यानुसार जपकर्ता तथा यज्ञकर्ता को दक्षिणा अर्पण की । उसी यज्ञ में हमारे कुलगुरु कुमर जी नामक पंडित और उनके छोटे भाई पण्डित हीरालाल जी (तिलक कंठी तोड़)पहुँच कर हमारे साथ दीक्षित हुए थे और इस यज्ञ को, उस समय, क्षत्रियों को बहुत दिनों से छूटे हुए संस्कार को फिर से कराने वाला तथा श्री स्वामी जी महाराज की विजय को सूर्योदय की भाँति प्रकाशित करने वाला, कहना उचित है । उस समय के आनन्द और आह्लाद का वर्णन नहीं किया जा सकता । इस कर्म से एक अपूर्व अग्नि प्रज्वलित हो उठी अर्थात् इस यज्ञ से धर्मात्माओं के मृत हृदयों में धर्म की अभिनव अग्नि जल उठी और क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य चारों ओर से आ-आकर संस्कार कराने लगे और स्वामी जी महाराज भी निर्भय और निर्भय और नि:शंक होकर आठों गप्पों का खंडन करने लगे ।

हीरावल्लभ शास्त्री से छः दिन धर्म-चर्चा, शास्त्री जी द्वारा सत्यग्रहण, मूर्तित्याग और वेद -प्रतिष्ठा - पौष के महीने में पाडित हीरावल्लभ पर्वती शास्त्री, स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने अनूपशहर से आये । उस दिन लगभग दो हजार मनुष्यों की भीड़ थी । पंडित हीरावल्लभ जी सभा के मध्य में एक छोटे से सुन्दर सिंहासन पर बालमुकुन्द, गोमतीचक्र, शालिग्राम आदि की मूर्तियाँ रखकर यह प्रतिज्ञा करके बैठे कि स्वामी जी महाराज के हाथ से (भोग लगवा कर) उठूँगा; परन्तु वह दिन दोनों के धारा-प्रवाह संस्कृत बोलने में समाप्त हुआ और इसी प्रकार छ: दिन पर्य्यन्त धर्मचर्चा होती रही । कई-कई श्रोता प्रतिदिन नये-नये आते जाते रहे । अन्त में हम सब सभास्थ लोगों के सामने श्रीमत् पंण्डित द्रव्योपस्थापक (मूर्तिपूजक) शास्त्री हीरावल्लभ पर्वती ने खड़े होकर श्रीमान्

---

१. इन आठ गप्पों का स्वामी जी खंडन करते रहे अर्थात् इन आठ बुराइयों का नाम उन्होंने आठ गप्पें रक्खा था । प्रथम यह कि अठारह पुराण जो व्यासजी के नाम से जाली बनाये हुए हैं वे अशुद्ध और अप्रमाण हैं । दूसरी मूर्ति-पूजा: , तीसरी (बुराई) सम्प्रदाय; (अर्थात्) शैव, गणपति, रामानुज आदि सब अनुचित और कृत्रिम हैं। चौथी बुराई तन्त्रग्रन्थ वाममार्ग आदि । पांचवी मादक द्रव्यों का सेवन । छठी बुराई व्यभिचार । सातवीं बुराई चोरी । आठवीं असत्य - भाषण, धोखा देना , कृतघ्नता - ये आठ गप्प अर्थात् बुराइयाँ है; इन्हें छोड़ना चाहिए ।

विद्वान् योगिराज श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज की संस्कृत में स्तुति कर प्रणाम किया और बड़े उच्च स्वर से हम सब सभास्थों को सुनाकर कहा कि स्वामी जी महाराज जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य और प्रामाणिक है । इसके पश्चात वह सिंहासन जिस पर अटरा-बटरा आदि रखी थीं - उठाकर सब मूर्तियां गंगा में डाल दीं और फिर उसी सिंहासन पर वेद भगवान् को प्रतिष्ठित किया । यह देख स्वामी जी महाराज ने शास्त्री जी के सत्य ग्रहण करने और मिथ्या के त्यागने की बड़ी प्रशंसा की । फिर क्या था पोल खुल गई, चोरी पकड़ी गई, मिथ्या-ग्राही निराश और हतोत्साह होकर अपने-अपने घरों को चले गये ।

माघमास के अन्त में प्रस्थान, कानपुर चले गये - और स्वामी जी महाराज भी माघमास के अन्त में अर्थात् ८ फरवरी, सन् १८६८ को वहाँ से चलकर भ्रमण करते हुए रामघाट, सोरों, पटियाली, कंपिला फर्रुखाबाद, कानपुर तक चले गये ।

२० मई सन् १८६८ में फिर कर्णवास में - ज्येष्ठ बदी १३ संवत् १६२५ तदनुसार २० मई, सन् १८६८ को कर्णवास में उसी कुटिया पर फिर आ विराजमान हुए । और ज्येष्ठ शुदी १० तदनुसार ३१ मई, सन् १८६८ को यहां गंगास्नान का मेला था ।

क्रमश:....................

'शोभायात्रा के गीत' शीर्षक ग्रन्थ का लोकार्पण

गुरुकुल आश्रम आमसेना (उड़ीसा) की स्वर्णजयन्ती महोत्सव के अवसर पर अध्यात्म पथ के यशस्वी सम्पादक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी की शोभायात्रा के गीत नामक पुस्तक का लोकार्पण पतंजलि विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य बालकृष्ण जी के कर कमलों से सम्पन्न हुआ ।

इस पुस्तक में प्रभातफेरी, शोभायात्रा , ऋषि दयानन्द ,स्वामी श्रद्धानन्द आर्यसमाज के स्थापना दिवस आदि पावन अवसरों पर गाये जाने वाले प्रेरक एवं आत्मोत्कर्ष परक गीतों का अनूठा संग्रह है । पुस्तक का लोकार्पण करते हुए आचार्य बालकृष्ण जी ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के महत्व, उस शिक्षा की आवश्यकता और वर्तमान समय में गुरुकुलों के विस्तार पर बल दिया ।

सत्यार्थ प्रकाश काव्य सुधा

महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश का काव्यानुवाद

– पं० देवनारायण तिवारी 'निर्भीक'

मो0 : 9830420496

(८)

श्री पं० देवनारायण तिवारी – आर्य समाज के उपदेशक और विद्वान् कवि हैं, इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिसमें ४ महाकाव्य हैं । पं० जी ने सत्यार्थ प्रकाश का छन्दबद्ध भावानुवाद किया है । आर्य समाज कलकत्ता ने इसे आर्य संसार मासिक पत्र में धारावाहिक रूप से प्रकाशित करने का निश्चय किया है ।

यह दशम् कड़ी आपके समक्ष है । – सम्पादक

प्रथम समुल्लास (गत फरवरी अङ्क से आगे)

इस हेतु सुन्दर नाम **''नारायण''** कहा है ईश का ।
सबसे बड़ा आश्रय सभी का अङ्क है जगदीश का ॥

(चदि आह्लादे) इस धातु से चन्द्र शब्द सिद्ध होता है
यश्चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः॥
छन्द - है ब्रह्म ही आनन्द धन, आनन्द दाता सर्व का ।
इस हेतु कहते **''चन्द्र''** उसको वह सदा प्रिय सर्व करा ॥ १०० ॥

(मगि गत्यर्थक) धातु से मेङ्गरलच् इस सूत्र से मङ्गल शब्द सिद्ध होता है ।
यो मंङ्गति मंङ्यति वास मङ्गलः।
छन्द - जो स्वयं मंगलरूप औ सब जीव का मंगल करे ।
परमात्मा का नाम मंगल इसलिए बुधजन करें।

(बुध अवगमने) इस धातु से बुध शब्द सिद्ध होता है
यो बुध्यते बोधयति वा स बुधः॥
छन्द - है ब्रह्म ज्ञान स्वरुप निज भी, और सबको ज्ञान दे-
इस हेतु बुध है नाम उसका शुद्धमति गतिमान दे ॥ १०१ ॥
(बृहस्पति का अर्थ (पीछे) कह दिया गया है ।

(**ईशु चिर पूती भावे**) इस शब्द से "**शुक्र**" शब्द सिद्ध होता है।
यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः ।।
छन्द - अत्यन्त शुद्ध (पवित्र) है (जिसमें न रञ्च विकार है।
जिसकी शरण से जीव भी होता सदा अविकार है।
इस हेतु उसको "**शुक्र**" कहते, वह हरण कर गन्दगी
करता सभी को शुद्ध, देता है मलय सम जिन्दगी ॥ १०२ ॥

(**चर गति भक्षणयोः**) इस धातु से शनैस् अव्यय होने से "**शनैश्चर**" शब्द सिद्ध हुआ है।
यः शनैश्चरति स शनैश्चरः ।।
छन्द - जो गति स्वयं करता नहीं जग को चलाता मन्द है।
गतिशीलता सबकी अलख रखकर बढ़ाता मन्द है ॥
सबको सहज ही प्राप्त जो प्रभु पूर्ण धीरजवान है।
इससे "**शनैश्चर**" नाम उसका कह रहे विद्वान हैं ॥ १०३ ॥

(**रह त्यागे**) इस धातु से राहु शब्द सिद्ध होता है।
यो रहति परित्यजति दुष्टान् राहयति त्याजयति स राहुरीश्वरः ।।
छन्द - जो एक ही अद्वैत है निर्लेप जिसका रूप है।
संयुक्त है जिससे नही कुछ, भिन्न सबसे भूप है ॥
तजता सदा जो दुष्ट जनको, साधुजन को रख अलग
अर्थात् भक्तों को कमी करता नहीं निज से बिलख ॥ १०४ ॥

देता सदा सुख निज उपासक को अलग कर ताप से।
निज तेज तन में व्याप्त कर रक्षा करे नित पाप से।.
इस हेतु कहते "**राहु**" उसको, वह सदैव अजेय हैं।
वह है अकेला ही स्वयं-सा स्वयं गतिप्रमेय है ॥ १०५ ॥

(**कित निवासे रोगापनयने च**) इस धातु से केतु शब्द सिद्ध होता है।
यःकेतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः ॥
छन्द - सबका निवास्थान है जो सर्वथा निरोग है।
रहता जगत् से दूर यानी भोगता नहिं भोग है ॥
जो मोक्ष हित ध्याते उसे उनका छुड़ाता पाप है।
नीरोग रख उनको सदा सब दूर करता ताप है ॥ १०६ ॥

फिर मोक्ष के अवसर उन्हें कर निर्विकार सँवारता ॥
इस हेतु कहते केतु उसको , वह अधों को मारता ॥

(यज देव पूजा सङ्गति करण दानेषु)
इस धातु से **''यज्ञ''** शब्द सिद्ध होता है ।
यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञ;!।

छन्द - जो व्यस्ततम परमाणुओं को संगठित करता सदा ।
अर्थात कर संयुक्त उनको तत्व सारे छानता ॥ १०७ ॥

फिर यज्ञ मय संसृति बनाता धर्म-गुण सब जोड़ता ॥
तन्मात्र विकसित कर उन्हें सब वस्तुओं को तोड़ता ॥
संयुक्त करता है पुन: रचना बनाता है नयी ।
वह यज्ञरूप प्रभो हमें फिर वस्तु देता है कई ॥ १०८ ॥

विद्वान् जिसको मानकर सबकुछ उसे ही ध्यावते ॥
अर्थात् उसको पूज्य मानें जड़ जगत् को त्यागते ॥
ले आदि ब्रह्मा से सभी ऋषि मुनि उसे ही मानते ।
सर्वत्र व्यापक ब्रह्म को कह यज्ञरूप उपासते ॥ १०९ ॥

इस हेतु उस परमात्मा का **''यज्ञ''** नाम विशिष्ट है ।
वह ही मुमुक्षों का परम है लक्ष्य , उनका इष्ट है ॥
है यज्ञ कर्म महान् , ईश्वर स्वयं यज्ञ स्वरूप है ।
स्तुति करें उस ईश की , वह ही महत्तम भूप है ॥ ११०॥

(हु दानादयो:, आदाने चेत्ये के) इस धातु से
''होता'' शब्द सिद्ध हुआ है । यो जुहोति स होता ॥

छन्द - जो देय वस्तु प्रदान करता सर्व जीवों को अहा !
औ ग्रहण करने योग्य का ग्राहक वही प्रभु है महा ।
इस हेतु **''होता''** नाम उस परमात्मा का एक है ।
देता वही फिर ग्रहण करता जो कि जगत् अनेक है ॥ १११ ॥

क्रमशः ....

पं० शिवाकान्त जी उपाध्याय

श्री पण्डित शिवाकान्तजी उपाध्याय का जन्म प्रसिद्व उपाध्याय परिवार में ५ जुलाई सन् १९३५ ई० को हुआ था। आपकी जन्मभूमि ग्राम झौवारा, जिला सुल्तानपुर (उ० प्र०) है। श्री शिवाकान्तजी के अग्रज आचार्य पं० रमाकान्तजी एवं पण्डित उमाकान्तजी आर्यसमाज के निष्ठावान प्रचारक रहे हैं। इस प्रकार पण्डित शिवाकान्तजी अपने शैशव से ही आर्यसामाजिक विचारधारा की छत्रछाया में पाले-पोसे गये। आप कलकत्ता विश्वविद्याल से एम० एससी०, एल-एल० बी० का अध्ययन कर अपने जीवन में पारिवारिक परम्परा के अनुसार आर्य-समाज के पण्डित प्रचारक के रूप में तन्मय रहे।

श्री शिवाकान्तजी वयस्क होने के साथ ही आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य एवं सभासद् बने। एक प्रकार से आर्यसमाज कलकत्ता इनकी निर्माण-भूमि है। शिवाकान्तजी जबतक कलकता में रहें, कलकता के कई आर्यसमाजों का प्रचारभार सम्भालते रहे। आर्यसमाज बड़ाबाजार, आर्यसमाज हावड़ा, आर्यसमाज भवानीपुर, आर्यसमाज मल्लिक बाजार, आर्य स्त्री समाज मल्लिक बाजार इत्यादि स्त्री समाजों के साप्ताहिक सत्संग इनकी देखरेख में चलते रहे। श्री शिवाकान्तजी कुछ वर्षो तक बंगाल प्रतिनिधि सभा के भी सदस्य रहे। उन दिनों शिवाकान्तजी की प्रेरणा से प्रतिनिधि सभा बंगाल का **'आर्यसमाज'** नामक मासिक मुखपत्र पुन: प्रकाशित होना आरम्भ हुआ, किन्तु कुछेक अंक निकल कर बन्द हो गया। श्री शिवाकान्तजी कुछ दिनों तक गुरुकुल वैद्यनाथ धाम के सदस्य रहे। आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की विद्यार्य-सभा और धमार्य सभा के सदस्य रहे हैं।

श्री शिवाकान्तजी कुशल वक्ता, सफल व्याख्याकार और यशस्वी पुरोहति थे। आपने पंडित अयोध्या प्रसादजी के सम्पर्क में वैदिक गणित का कुछ अभ्यास किया था। वेदव्याख्या, यज्ञ, कर्मकाण्ड में आपकी विशेष अभिरुचि रही है। सन् १९८२ ई० में आप दिल्ली चले गये, और आर्यसमाज राजेन्द्रनगर, दिल्ली में रहते हुए दिल्ली के आर्यसामाजिक जगत् में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार में लगे रहे। श्री शिवाकान्तजी साइन्स के विद्यार्थी रहे हैं और यज्ञ के वैज्ञानिक पक्ष अपके कुछ महत्वपूर्ण लेख सामयिक पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं।

दिल्ली जाने के पश्चात् से ही आचार्य शिवाकान्त जी दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान आदि राज्यों समेत समस्त उत्तर भारत, मध्य भारत और पश्चिमी भारत में अपनी विद्वत्ता, प्रखर ओजस्वी वाणी और मधुर स्वभाव से छा गए. जीवन में आर्य समाज का प्रचार और ऋषि दयानंद के मिशन का विस्तार, बस ये ही दो लक्ष्य रह गए थे। इनसे प्रभावित होकर अनेक नवयुवक प्रचारक आर्य समाज का प्रचार करने के लिए समर्पित और प्रतिबद्ध हुए जो आज भी अहर्निश प्रचार कार्य में लगे हुए है. आर्य समाज के मिशन के प्रचार की इसी धुन में आचार्य शिवाकांत जी ने अपनी शारीरिक सुख सुविधा को भी अनदेखा करना शुरू कर दिया। स्वास्थ की परवाह किये बिना एक ही धुन थी कि ऋषि के ऋण से उऋण होना है। आपके अग्रज और प्रसिद्ध वैदिक विद्वान आचार्य अमाकांत जी उपाध्याय अक्सर चिन्तित होकर आपके स्वास्थ्य के बारे में पूछते तो आप हँस कर टाल जाते. परिणाम यह हुआ कि स्वास्थ्य गिरने लगा.। परिवार और डॉक्टरों की ज्यादा रोक टोक होने लगी पर फिर भी वैदिक सिद्धांतो के प्रचार का कोई भी अवसर आप नहीं छोड़ते थे। **(शेषांष पृष्ठ २८ पर)**

''संस्कृति-विमर्श''

- देव नारायण भारद्वाज

संस्कृत के प्राणाधार हैं संस्कार । संस्कार वह क्रिया कलाप है जिसके द्वारा किसी वस्तु-भाषा-व्यक्ति को संस्कृत किया जाता है । संस्कारों के इसी सार-समुच्चय को संस्कृति कहते हैं । जिस प्रकार किसी अज्ञात पदार्थ के आविष्कार से उसे संसार के सामने प्रकाश में लाया जाता है । जिस प्रकार किसी अशुद्ध वस्तु को परिष्कार करके उसे परिष्कृत किया जाता है ; उसी प्रकार संस्कृति-पर्यावरण चेतना, पवित्रता व आत्मोत्कर्ष को प्रोत्साहित करती है । संस्कृति हमारे सामाजिक व्यवहार, हमारी भाषा व साहित्य को परिमार्जित करती है । यही नहीं संस्कृति हमारी सूक्ष्म वृत्तियों को विकसित करती है ; पाशविकता को मानवीयता की ओर और मानवीयता को देवत्व की ओर अग्रसर करती है । संस्कृति सदैव आदर्श दिशा का ओर इंगित करती है; इसमें शुभ सकारात्मक ध्वनि ही गुंजरित होती है; अशुभ नकारात्मक ध्वनि को कोई स्थान नहीं है । संस्कृति का शब्द-विन्यास सं + कृति = सम्यक कृति की फलश्रुति प्रदान करता है । आविष्कार, परिष्कार एवं संस्कार के सुगम त्रेत को उदाहरण से स्पष्ट करते है । कोई जौंहरी बहुमूल्य मणि रत्नों की खोज में भूमि की खुदाई कराता है । दीर्घ काल की खुदाई के बाद भूमि की गहराई में छुपे हुए कुछ रत्न -प्रस्तर मिलते हैं । यह हुआ उनका आविष्कार । वह इन प्रस्तर-कणों की कटाई-छिलाई एवं घिसाई करता है तो उनके ऊपर के मल विक्षेप की छंटाई हो जाती है । इस परिष्कार क्रिया से परिष्कृत होकर वे प्रस्तर-कण श्वेत शुभ्र प्रकाशमान 'हीरा' के रूप में चमकने -दमकने लगते है । इनका मूल्य लाखों गुणा अधिक हो जाता है ।

सामान्यतया आविष्कार एवं परिष्कार की क्रियायें प्रकृति के जड़ पदार्थों तक ही सीमित रहती हैं । वैज्ञानिक क्षेत्र में भी इनका प्रभाव जगत को चमत्कृत करता रहता है । जब हम चेतन प्राणि जगत पर दृष्टिपात करते हैं , तो वहाँ पर आविष्कार-परिष्कार से कहीं अधिक संस्कार का प्रभाव-क्षेत्र दृष्टिगत होता है । संसार की असंख्य जीव जन्तुओं की योनियों को तीन श्रेणियों में परिगणित किया जा सकता है । एक-वे अधोमुखी है जिनके सिर भूमि मे गड़े रहते हैं, दूसरे वे सममुखी हैं जिनके सिर भूमि के समानान्तर होतें हैं , तीसरे वे ऊर्ध्वमुखी हैं, जिनके सिर आकाश की ओर उठे रहते हैं । प्रथम में समस्त वृक्ष -वनस्पति, द्वितीय में समस्त कीट-पतंग, पशु-पक्षी और तृतीय में समस्त मानव प्राणी आते हैं । प्रथम व द्वितीय कोटि के प्राणी अपने जन्मजात स्वाभाविक ज्ञान के अनुसार अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर लेते हैं । उनके आहार-आराम-आरक्षा-प्रजनन की क्रियायें

स्वाभाविक रूप से चलती रहती हैं । ऊर्ध्वमुखी मंनुष्य को स्वाभाविक के साथ-साथ ईश्वर ने नैमित्तिक ज्ञान का वरदान भी दिया है ; जिसकी अपेक्षा से वह रंक से राजा बन सकता है और जिसकी उपेक्षा से वही राजा से रंक हो जाता है ।

इसीलिए महर्षि मनु ने कहा है — " **जन्मना जायते शूद्र; संस्कारात्द्विज उच्यते** " - अर्थात् सभी मनुष्य '**शूद्र**' के रूप में जन्मते हैं ; किन्तु संस्कारों के द्वारा ही वे 'द्विज' बनते हैं । शूद्र व द्विज शब्दों को किसी जाति विशेष से जोड़ना - महर्षि मनु का अभिप्राय नहीं है । शूद्र वही है जो जिस शरीर के साथ जन्म लेता हैं ; उसी के श्रम्र-स्वेद-विन्दुओं से द्रवित होकर दूसरों की सहायता करता है । स्वल्प भुगतान पर जीवन यापन कर लेता है । 'द्विज' वह है जो एक बार माता-पिता से जन्म लेता है और दूसरी बार संस्कारों के गर्भ से जन्म लेकर संस्कृति के प्रांगण में फलता-फूलता व बीज बिखेरता है । "**यतोऽभ्युदय निः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः;**"(वै० दर्शन) अर्थात् जिससे लौकिक सुख व पारलौकिक आनन्द की सिद्धि होती है- वह धर्म है । धर्म बेतार का वह तार है जिसमें संस्कृति रूपी विद्युत प्रवाहित रहती है । धर्म शरीर आवरण के रूप में सृष्टि को धारण करता है, तथा संस्कृति आत्मा स्वरूप उसमें संचरण करती है । जैसे साधारण सोने को अग्नि में तपाकर कुन्दन बनाया जाता है , वैसे ही शिशुओं को संस्कार की भट्टी के व्रत-ताप से उनके दुर्गुणों को दूर कर तथा सद्गुणों को पूरा कर संस्कृति का श्रृंगाार बना दिया जाता है।

बात सोलह या न्यूनाधिक संस्कारों की ही नहीं , इनको करके सम्प्रदाय के लोग अपनी सन्तान को श्रेष्ठ बनाने का उपक्रम करते हैं। वास्तव में यह निरन्तर चलते रहने वाली प्रक्रिया है । मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हर क्षण अपने मन-मस्तिष्क में सूचनाओं का संचरण करता है । वह जैसा देखता-सुनता-सूँघता-खाता-स्पर्श करता है, वैसा वह सोचने लगता है । जैसा वह सोचता है, वैसे ही उसके विचार बनते हैं, जैसे उसके विचार होते है, वैसे ही उसके संस्कार बनते हैं, जैसे उसके संस्कार होते हैं, वैसा ही उसका व्यवहार होता है, जैसा उसका व्यवहार होता है, वैसा ही उसका चरित्र बनता है । मानवीय चरित्र में ही, उसकी संस्कृति की झलक दिखायी देती है । "**भनुर्भव जनया दैव्यंजनम्**"**(ऋ० १०.५३.६)** के अनुसार मननशील मनुष्य दिव्य मनुष्यों को जन्म देते व निर्माण करते हुए संस्कृत करते चले जाते हैं तो यही देश क्षेत्र विशेष की सामूहिक संस्कृति कहलाने लगती है ।

मानव रूपी संचरणशील मुद्रा के दो पार्श्व हैं, एक ओर संस्कृति, दूसरी ओर चरित्र है । मुद्रा का अग्र या पृष्ठ, कोई भी भाग असामान्य होने पर वह प्रचलन से बाहर हो जाती है । दोनों पार्श्व सम्यक न होने पर मानव की भी यही स्थिति हो जाती है, वह समाज के लिए अवांछनीय हो जाता है । स्वामी विवेकानन्द भारत की महान संस्कृति का

सन्देश लेकर अमेरिका गए थे । उनकी अलमस्त वेशभूषा एवं व्यवहार को देखकर वहाँ के निवासी उनको कोई विचित्र प्राणी समझ कर हास्य-विनोद में मग्न हो जाते थे । ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने नागरिकों को सदा-सदा के लिए सचेत कर दिया था । "In your country it is tailor who makes a man cultured and civilised, but I belong to that country where a man's character and moral shritual values make him cultured and civilised." अर्थात् आपके देश में दर्जी परिधान पहना कर सभ्य बनाता है, किन्तु भारत जहाँ का मैं निवासी हूँ वहां मनुष्य को चरित्र, नैतिकता, एवं उसके आध्यात्मिक मूल्य उसे सभ्य व संस्कृत बनाते हैं ।

कई बार सभ्यता एवं संस्कृति को एक समझ लिया जाता है । जैसे कोई फल ऊपर से रंग-रूप एवं आकार में बहुत आकर्षित करता है, किन्तु चखते ही मुँह कड़ुआ हो जाता है और फेंक दिया जाता है । ऐसे ही शरीर का रूपाकर्षण सभ्यता समझनी चाहिए, और फल के अन्दर व्याप्त सुगन्धित, मधुर-पोषक रस को संस्कृति रूपी अन्त: शक्ति समझनी चाहिए । इसके लिए जन्म काल से ही अभिभावकों को सतर्क रहना पड़ता है । इस ध्येय से शिक्षा की अपरिहार्य आवश्यकता है । शिक्षा से साधारण तात्पर्य सीखना-सिखाना, सीख देना और आवश्यक होने पर दण्ड देना । महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा की जो परिभाषा दी है वह सभी मानवीय पक्षों का आच्छादन करती है- **''जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती हो और अविद्यादि दोष छूटें- वह शिक्षा है ।''** सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में उन्होने लिखा भी है -

माता शत्रु: पिता वैरी येन बालो न पाठित : ।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये वको यथा ॥

शरीर से दुर्बल व्यक्ति भी अपनी विद्याजनित संस्कृति द्वारा शीर्ष पद का अधकारी बन जाता है । प्रधान मन्त्री मोदी ने विकलांग को दिव्यांग की संज्ञा देकर अपनी सहृदयता का परिचय दिया है । कभी इसके लिए राजा जनक को भी बाध्य होना पड़ा था। उनकी वृहद सभा में एक बालक अष्टावक्र ने अभी द्वार में प्रवेश ही किया था, कि सभी सभासद् उनको देखकर खिलखिलाते हुए हँसने लगे । कारण यह था, कि वह बालक अपने शरीर के आठ अंगो से टेढ़ा था । जब सभा की सामूहिक हँसी थम गयी, तब अष्टावक्र ने अट्टहास करते हुए अपनी हँसी गुञ्जायमान कर दी । बाद में राजाजनक ने नम्रता पूर्वक अष्टावक्र को सम्बोधित करते हुए, उनसे पूछ लिया - अष्टावक्र ! सभा तो तुम्हारे इस वक्रातिवक्र शरीर को देख कर हँस पड़ी , पर तुम क्यों हँसे ? बताइए ? अष्टावक्र ने उत्तर दिया -राजन ! आप विदेह कहलाते है, और मैं यहाँ विद्वानों की सभा

समझ कर आया था, पर यहाँ तो सभी चर्मकार दिखाई दिए , जिन्होने मेरे शरीर को देखा, मेरी अन्तरात्मा के सौन्दर्य ज्ञान को नहीं आँका । राजा जनक ने बालक अष्टावक्र का क्षमापूर्वक स्वागत किया और उनसे ज्ञानोपदेश ग्रहण किया । आध्यात्मिक संस्कृति साहित्य में अष्टावक्र गीता का प्रमुख स्थान है ।

साक्षर लोग सुशिक्षित होकर एक से एक उपयोगी चमत्कार करते देखे जाते है, पर वे तब अशिक्षित ही रह जाते हैं, जब वे अपने ज्ञान का दुरुपयोग अन्याय अपमिश्रण एवं अत्याचार के लिये करते हैं । इसके विपरीत निरक्षर लोग प्रशिक्षित होकर अपनी सहज सुलभ बुद्धि से उत्तम रचनात्मक कार्य कर लेते हैं । लोकप्रिय ग्रन्थ पञ्चतन्त्र में एक आख्यान आता है । चार भाई थे । तीन भाई पढ़े लिखे विशेषज्ञ थे: चौथा छोटा भाई अनपढ़ किन्तु बुद्धिमान था । इसीलिए वे छोटे भाई से लगाव नहीं रखते थे । जब वे धनोपार्जन के लिए गाँव से किसी नगर में जाने लगे ; तो भी कठिनाई से साथ ले जाने को तैयार हुए । मार्ग में एक जंगल पड़ा वहाँ कुछ अस्थियाँ पड़ी देखकर ढांचा विशेषज्ञ भाई ने अस्थियों को क्रमानुसार व्यवस्थित करके पशु विशेष का अस्थिजाल खड़ा कर दिया, दूसरे रसानज्ञ भाई ने उस पर मास-त्वचा का आवरण चढ़ा दिया । तीसरे भाई प्राणवायु विशेषज्ञ को छोटे भाई ने बहुत रोका , सावधान किया । बोला, इस जानवर को पहचाने के बाद भी आप जीवित करना चाहते हैं । विद्या का अभिमान आप लोगों को खा जायेगा । छोटे भाई ने पेड़ पर चढ़कर अपने जीवन को बचा लिया ; जबकि प्राण प्रतिष्ठा होते ही कालान्तर से क्षुधित शेर ने तीनों विशेषज्ञ भाइयो को अपना आहार बना लिया।

संस्कृति-आन्तरिक, आध्यात्मिक एवं त्याग की प्रतीक है, जबकि सभ्यता बाह्य, भौतिक एवं भोग पर आधारित है । महाविधातक ए० के० ४७ राइफल की खोज करने वाले **''माईकेल कलष्कि निकोव''** को तब बड़ी निराशा हुई , जब आतंकवादियों द्वारा उसका दुरुपयोग होने लगा । उन्होने कहा था कि '' यदि मैं किसानो के उपयोग का अच्छा यन्त्र आविष्कृत करता तो मुझे अधिक सन्तुष्टि होती '' (वेदवाणी नवम्बर २०११) सम्पूर्ण कथ्य का चार विन्दुओं में सार-समाहार करके लेखनी को विश्राम देना उचित समझता हूँ। न जियो न जीने दो - विष्कृति है . जियो किन्तु जीने न दो - विकृति है. जियो और जीने दो - प्रकृति है . न जियो किन्तु जीने दो - संस्कृति है ।

- देव नारायण भारद्वाज

प्रधान सम्पादक 'बयस्वी'

'वरेण्यम' अवन्तिका (प्रथम)

रामघाट मार्ग, अलीगढ (उ.प्र)

शिवरात्रि से दयानन्द में परिवर्तन

डॉ० रवीन्द्र कुमार शास्त्री ''सोम''

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती एक ऐसे महामानव थे जिनकी तुलना में आज तक सम्पूर्ण विश्व की वसुन्धरा पर न कोई हुआ । भूतो न भविष्यति अर्थात पूर्व में कभी नहीं हुआ था और न भविष्य में कोई होवे ऐसी आशा है । जब समस्त संसार पोपों पाखण्डियों एवं धूर्तो के चक्कर में पिस रहा था । उस समय समाज में छुआछूत अंधविश्वास दहेज प्रथा, जाति प्रथा बाल्य विवाह आदि अनेक प्रकार की बुराईयाँ एवं कुरीतियाँ व्याप्त थी । ब्राहमण, क्षत्रिय एवं वैश्यादि जाति के लोग छोटे वर्ग के लोगों को हेय दृष्टि से देखते थे । जब शूद्र की माँ बहनें मातायें आदि कुंये पर पानी लाने के लिये जाती थी । तो उस समय उच्च वर्ग के लोग उन्हें पानी भरने व लाने नही देते थे और कहते थे कि तुम सभी शूद्र हो । शूद्रो को कुँये पर आने से कुंआ भी अछूत हो जाता है । ऐसी विडम्बना एवं दशा को देखकर स्वामी दयानन्द ने सन १८७५ ई० में काकडबाड़ी नामक स्थान मे मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की और संसार के लोगो से कहा कि वेदो के अनुसार कर्मो के आधार पर मनुष्य जाति को चार भागों में बांटा गया है । जो लोग वेद शास्त्र पढ़ते हैं एवं संध्या हवन करते हैं, वे ब्राह्मण कहलाते है , जो लोग असहायों एवं कमजोरों की रक्षा करते हैं वे क्षत्रिय कहलाते हैं , जो लोग भूखो को रोटी एवं प्यासे को पानी पिलाते है वे वैश्य कहलाते हैं तथा जो लोग समाज एवं राष्ट्र की सेवा करते है और दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर उनकी सेवा करते है, वे शूद्र कहलाते हैं ।

स्वामी दयानन्द का जन्म गुजरात प्रान्त के काठयावाड़ जिले के अर्न्तगत टंकारा ग्राम में सन १८२४ ई० में हुआ । जिनका बचपन का नाम मूलशंकर था । कौन जानता था कि आगे चलकर यह मूलशंकर स्वामी दयानन्द के नाम से पूरे विश्व मे प्रसिद्ध होगा। उन्होने बचपन में अपनी बहन की मृत्यु देखी और कुछ दिनों के बाद उन्होंने अपने चाचा की मृत्यु देखी । उनकी मृत्यु को देखकर उन्हें ऐसा झटका लगा कि उन्होंने अपने मन में सोचा कि क्या मनुष्य का जीवन यही है? मनुष्य के जन्म लेने के पश्चात् उसकी मृत्यु निश्चित है । यह सोचकर उनमें वैराग्य की भावना जागृत हो गई ।

शिवरात्रि का दिन था । मूलशंकर ने अपनी माँ से कहा माँ । आज शिवरात्रि है। पिताजी की जगह पर आज शिवव्रत का उपवास मैं रखूँगा । माँ बोली बेटा मूलशंकर! शिवव्रत का उपवास रखना बहुत कठिन है । तुम नही रख पाओगे । परन्तु मूलशंकर कहाँ मानने वाला था । उन्होने शिवव्रत का उपवास रख ही लिया । शिवव्रतोपवास रखने के बाद मन में अनेक प्रकार के विचार उठ रहे थे । वह सोच रहे थे कि बारह बजे रात्रि में मुझे सच्चा शिव का दर्शन होगा । परन्तु ठीक उसके विपरीत हुआ । उसी समय एक चूहा आया और शिवपिण्डी पर चढ़े हुये मोदकों को खाने लगा । यह देखकर मूलशंकर ने अपने मन में सोचा कि यह कैसा शिव है ? जो अपनी रक्षा नहीं कर सकता ? वह हमारी रक्षा क्या करेगा ? यह असली शिव नहीं बल्कि नकली शिव है । उन्होंने शिवव्रत का

उपवास तोड़कर भोजन कर लिया । माँ के समझाने पर भी उन्होंने नहीं माना । कुछ दिनों के बाद वह घर से निकलने की तैयारी करने लगे । अंत में वह मूलशंकर अपने सारे परिवार एवं घर को छोड़कर वैरागी हो गये । सच्चे शिव की गवेषार्थ कई वर्षो तक अनेक तीर्थ स्थानों पर भटकते रहे । अंत मे वह काशी पहुँचे और स्वामी पूर्णानन्द से संन्यास की दीक्षा ले ली । एकदिन स्वामी पूर्णानन्द जी बोले, दयानन्द ! तुम जिस उद्देश्य से यहाँ आये हो वह उद्देश्य यहाँ पूरा नहीं होगा यह उद्देश्य मेरे एक मित्र जो प्रज्ञाचक्षु है वेदों, दर्शनो एवं व्याकरण के बड़े विद्वान हैं । जिन्हें विद्वान लोग व्याकरण के सूर्य कहते हैं । वहीं पूरा हो सकता है । तदुपरान्त स्वामी दयानन्द मथुरा में स्वामी विराजानन्द के पास पहुंचे । जैसे ही स्वामी दयानन्द सरस्वती ने महर्षि प्रज्ञा चक्षु स्वामी विरजानन्द के कुटिया के द्वार पर पहुँचकर दरवाजा खटकाया वैसे ही अन्दर से आवाज आती है कि तुम कौन हो ? स्वामी दयानन्द बोले, वही जानने के लिये आया हूँ कि मैं कौन हूँ ? दयानन्द की आवाज सुनकर वे समझ गये कि लगता है कि कोई जिज्ञासु छात्र मुझसे पढ़ने के लिये आया है । उस समय स्वामी दयानन्द की आयु छत्तीस वर्ष की थी । स्वामी दयानन्द सरस्वती लगातार तीन वर्षो तक स्वामी विरजानन्द से अध्ययन करते रहे । तीन वर्षो में ही वे व्याकरण, वेदों, दर्शनो के प्रकाण्ड विद्वान हो गये ।

स्वामी विरजानन्द से अध्ययन करने के पश्चात् स्वामी दयानन्द वेदो के प्रचार प्रसार मे लग गये । वेदो के प्रचार प्रसार करने से पहले स्वामी विरजानन्द बोले बेटा दयानन्द! आज समस्त संसार वेद विहीन होता जा रहा है । लोगो ने वेदों का पढ़ना छोड़ दिया है। अनेको शिष्यों मे तुम ही मुझे एक शिष्य मिले हो जो तुम मेरे सपनों को साकार कर सकते हो । और हुआ भी ऐसा ही । उन्होंने अपने गुरू का आदेश प्राप्त कर अपना सम्पूर्ण जीवन वेदो के प्रचार प्रसार में लगा दिया और दुनियाँ के लोगो से कहा - ओ ससार के लोगों! तुम सब वेदों की ओर लौटो । तभी मानव जाति का उद्धार हो सकता है । वेद परमात्मा की वाणी है । जो उनकी वाणी को अपने जीवन में उतारता है । उसका कल्याण हो जाता है । जो मनुष्य वेदों के अनुसार अपना आचरण करता है । उसका रास्ता प्रशस्त होते चला जाता है। जो मनुष्य अपने जीवन में सुख शांति चाहता है । उसे तो वेद-मार्ग को अपनाना ही पड़ेगा । स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के द्वितीय नियम लिखा है- ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है । उसी की उपासना करनी योग्य है ।

स्वामी दयानन्द का कथन है कि जो परमात्मा सतचित और आनन्द तीनों है, परन्तु जीवात्मा सत और चित है तथा प्रकृति केवल सत् है । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मनुष्यों को वेदों की ओर लौटने का आहवान किया था । उनका कथन था कि जो मनुष्य वेदानुकूल आचरण नहीं करता है । उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता । जो मनुष्य अपने जीवन में सुख शांति चाहता है । उसके लिये वेदमार्ग ही सबसे उत्तम मार्ग है । जो मनुष्य वेदों

के सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारता है उसका सुख शांति से व्यतीत होता है । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विश्व के लोगों से कहा था कि परमात्मा निराकार है । उनका कोई आकार नहीं है, परमात्मा का मुख्य नाम ओ३म है । जैसा कि महर्षि दयानन्द ने कहा था जो मनुष्य श्रद्धा और निष्ठा पूर्वक ईश्वर का ध्यान करता है । परमात्मा उसे मदद करता है। और जो इसकी भक्ति से सदा दूर रहता है । उसके जीवन मे हमेशा अशांति बनी रहती है । अत: हमें वेदों के सिद्धान्तों को अपने जीवन में अपनाना चाहिये । वेद का संदेश है कि जो मनुष्य जैसा कर्म करता है । ईश्वर उसे वैसा ही फल देता है । बुरे कर्मो का परिणाम हमेशा बुरा ही होता है और शुभकर्मो का परिणाम सदा सुखदायी होता है । अत: हमें मनुष्य तन पाकर स्वजीवन में सदा शुभ कर्म ही करते रहना चाहिये । किसी कवि ने बड़ा सुन्दर लिखा है-

अगर ऋषिवर की बातों पर जमाना चल गया होता ।
तो ये आंधी नहीं उठती किनारा मिल गया होता ।।
चमक उठता जमाने में दुवारा वेद का सूरज ।
जहालत मिट गई होती अंधेरा टल गया होता ।।
कहीं मजलूम ना रोते कहीं निर्दोष ना मरते ।।
तबाही का जो आलम है वो सारा जल गया होता ।।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने दिव्य ज्ञान से समस्त संसार को एक ऐसा दिव्य प्रकाश दिया जो युगों युगों को चमकता रहेगा । स्वामी दयानन्द के जीवन मे शिव रात्रि के दिन एक ऐसा मोड़ आया कि उनके सम्पूर्ण जीवन को बदल दिया । वह अंधकार से प्रकाश की ओर आ गये । शिवरात्रि के दिन भारत देश का भाग्योदय हो गया। यदि आज स्वामी दयानन्द सरस्वती न होते तो हिन्दू जाति नहीं बच पाती , आज हिन्दु, मुसलमान या ईसाई बनकर इतस्तत: घूमते दिखाई देते । उन्होंने दुनियां के लोगों से कहा था कि हम पहले आर्य थे और आज भी आर्य हैं । इस देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त था और यहां के रहनेवालों को आर्य कहते हैं । भगवान श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण सभी वैदिक धर्म के अनुयायी थे और सभी आर्य थे । जिस प्रकार से स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, वीर हकीकत राम आदि धर्मवीरों ने वैदिक धर्म की रक्षार्थ अपने को कुर्वान कर दिया । उसी प्रकार हमें भी अपने वैदिक धर्म की रक्षार्थ तन-मन-धन सर्वस्व न्योछावर करने के लिये हमेशा तैयार रहना चाहिये । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वाल विवाह को दूर किया और विधवा विवाह को पुर्नस्थापित किया । छुआछूत अंधविश्वास समाज में फैली हुई कुरीतियों तथा बुराईयों को दूर किया । ऐसे परोपकारी दयानन्द को हम सभी कभी नहीं भूल सकते । शिवरात्रि के दिन स्वामी दयानन्द के जीवन को बदल दिया । अपने जीवन काल के चौदह वर्ष पहले अंधकार में थे । लेकिन चौदह वर्ष के हुये मूलशंकर शिवरात्रि के दिन जाग उठा और अपने ह्रदय में सोचने लगा कि यह कैसा शिव है ? जो

शिव एक चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर सकता । वह हमारी रक्षा क्या कर सकेगा? शिवरात्रि के दिन ही स्वामी दयानन्द की आँखें खुली और उसी समझ उन्होंने निश्चित कर लिया कि मैं सच्चे शिव की खोज करके ही रहूँगा और उन्होने ऐसा कर दिखाया । स्वामी दयानन्द अपनी मूल अवस्था चौदह वर्ष पहले अंधकार में थे और चौदह वर्ष के शिवरात्रि के दिन के बाद वह मूलशंकर जिनका दयानन्द था । वह तमसो मा ज्योतिर्गमय अर्थात अंधकार से प्रकाश में आ गये । शिवरात्रि की घटना ने स्वामी दयानन्द के जीवन को बदल दिया । जिस दयानन्द ने वैदिक धर्म की रक्षा के लिये अपने को आहुत कर दिया । ऐसे परोपकारी ऋषिवर दयानन्द को शत शंत नमन करते हैं ।

महर्षि दयानन्द को कभी भुलाया जा नहीं सकता ।
सत्यार्थ प्रकाश के पाठकों भटकाया जा नहीं सकता ॥
जबतक नभ में सूरज चांद रहेगा ।
तवतक जगत में दयानन्द का नाम रहेगा ।

लेखक :

डॉ० रवीन्द्र कुमार शास्त्री ''सोम''

एम०ए० (संस्कृत । हिन्दी । शिक्षाशास्त्र), पी० एच० डी० साहित्य व्याकरणाचार्य
आयुर्वेद रत्न विद्या वाचस्पति, गुरूकुल इन्द्रप्रस्थ फरीदावाद
हरियाणा . मो०-८७००६४०७३६

(पृष्ठ २ का शेषांष)

४. शेख अब्दुल लतीब पुत्र स्व० अब्दुल माजिद शेख, आयु ४० वर्ष ने आर्य समाज कलकत्ता में दिनांक २५-०२-२०१८ को इस्लाम मत त्याग कर स्वेच्छा से वैदिक धर्म स्वीकार किया । शुद्धि संस्कार पं० देवव्रत तिवारी जी के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ । शुद्धि संस्कार के पश्चात् इनका नाम राजेश घोष रखा गया ।

५. शेख अब्दुल रज्जाक पुत्र शेख जैनुल अबेदिन, आयु २६ वर्ष ने आर्यसमाज कलकत्ता में दिनांक २५.०२. २०१८ को इस्लाम मत त्याग कर स्वेच्छा से वैदिक धर्म स्वीकार किया । शुद्धि संस्कार पं० देवव्रत तिवारी जी के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ । शुद्धि संस्कार के पश्चात् इनका नाम राजू राय रखा गया ।

६. सोहाना बेगम पुत्री पुर्नेन्दु नायक, आयु २३ वर्ष ने आर्य समाज कलकत्ता में दिनांक २५.०२.२०१८ को इस्लाम मत त्यागकर स्वेच्छा से वैदिक धर्म स्वीकार किया । शुद्धि संस्कार पं० देवव्रत तिवारी जी के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ । शुद्धि संस्कार के पश्चात् इनका नाम शुभ्रानायक रखा गया इसके साथ इनके पुत्र शेख सायन आयु ९ वर्ष को भी वैदिक धर्म में दीक्षित किया गया। जिसका नाम सायन नायक रखा गया ।

योग विज्ञान की प्रासंगिकता

-परीक्षित मंडल 'प्रेमी'

योग विज्ञान संसार को अध्यात्म प्रवण भारत का अनुपम अवदान है । आदिकाल से अद्यावधि पर्यन्त इस धर्मभूमि भारत ने अनेक जीवनमुक्त योगियों, संबुद्ध संतों, तपाचारियों, ज्ञानियों, आप्तपुरूषों और महर्षि को उत्पन्न किया है, जिन्होंने समय-समय पर इस योग विज्ञान पर क्षीराश्मि डाला है । यह विश्व के समस्त मानवों के परमकल्याणार्थ प्रायोगिक पराविज्ञान है। यह मानव की अंतर्मुखी भगवत चेतना और ऊर्ध्वमुखी दिव्यचेतना को रूपांतरित और उन्मेषित करने का स्वर्णिम साधना है। यह वह हिरण्यमय नीड़ है जिसमें मन का भयाक्रांत विहग सुभग सहारा पा लेता है। इसकी नियमित साधना से साधक की मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक क्षमता विकसित होती है। इसकी मधुरिमामय महोदधि में अवगाहन करने से अंततः साधकों को अंतः प्रेरणा, अंतर्प्रज्ञा, अंतर्विवेक और अंतः प्रकाश आदि दिव्य क्षमताओं की उपलब्धि होती है। इसकी अप्रतिहत साधना से ही साधकों के अंतःकरण के असाध्य रोग - शोक, दुख- दर्द, पीड़ा-कराह, रुदन- क्रंदन, अवसाद-विषाद और गुप्त- लुप्त जटिल बीमारियों की झाड़ियाँ साफ हो जाती है। यह साधकों के मलीमस जीवन को परिष्कृत करने और उसे सर्वव्यापी भगवत चेतना से उद्भासित करने का दिव्य सोपान है। सामान्यतः साधकों की चेतना, प्रसुप्त रहती है लेकिन जब योग के साधक की अचेतन, अवचेतन, सचेतन, परिचेतन चेतना रूपांतरित होकर अतिचेतना की कनकाभ भूमिका में ऊर्ध्वारोहन करती है तब साधकों के बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार दो सौ दस नाड़ियों,सब अंगों, प्रत्यंगों तथा अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष और आनंदमयकोषों में परम भगवत पराचेतना भरती जाती है और स्पंदित होने लगती है। इसके सूक्ष्म प्रभाव से साधकों के अंतःकरण में कहीं अवसाद, विषाद, तनाव, विखराव, खिंचाव, बेचैनी या उत्तेजना नहीं रहती है। इसकी विधिवत् सघन साधना से साधकों की पराचेतना जगत् की तीन अवस्थाओं- आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिकता से परे अद्वैतात्मक परमसत्ता की ओर ऊर्ध्वमुख तथा अंतर्मुख होने लगती है।

योग यथार्थ पर अधारित अनुपम पराविज्ञान है। यह सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्ववर्णिक आत्म- रसायण प्रापक विज्ञान है। इसमें दकियानूसी अंधविश्वास, रूढ़िवाद, संप्रदायवाद का कलुष नहीं, जातिवाद, मज़हबवाद का उन्माद नहीं है और न पाखंड का छल-दंभ ही है। इसमें मधुमय उद्बोधन का पौरूष-राग है, दिव्य-प्रेरणा की अमंद ज्योति है। यह लहराती गंगा की तरह दिव्यता, भव्यता और पवित्र का आलोकगृह हैं यह मन की राजस और तामसिक वृत्तियों को परिष्कृत कर सात्विक चेतना की ओर उन्मेषित करने का गुह्यविज्ञान है। इसकी सतत साधना से साधकों की पराकॉस्मिक चेतना में 'समत्वं योग उच्चयते' का अमृत छलकता रहता है। इसके नियमित निदिध्यासन से साधकों के विमूर्च्छित भग्न-चेतना में प्राणमय पराचेतना का ऊर्ध्वगत सुरभित सरोज विकसित होता है। यह दैहिक, मानसिक और प्राणिक कषाय-कल्मषों को निक्षेपण करने का एकमात्र आंतरिक अनुशासन है। इसके सतत सघन ध्यानाभ्यास से निराशा,अज्ञान, उदासी, तनाव आदि का निवारण हो जाता है। इसके बहुविस्तृत वितान के अनुसार भोग, वासना और अभद्र भावों की भागदौड़ जीवन का सत्य नहीं है, बल्कि जीवन की स्वाभाविक स्थितियों के निविड़ अंधकार को दूरकर सकारात्मक सर्वोत्तम भावना

को इसी के द्वारा ही भावित किया जा सकता है। इसकी गरिमामय महिमा को स्वीकारते हुए परमपूज्य योगऋषि रामदेवजी महाराज ने ऊर्ध्वघोषणा की है- ''योग एक जीवन दर्शन है, योग आत्मानुशासन है, योग एक जीवन पद्धति है, योग व्याधिमुक्त जीवन की संकल्पना है । योग आत्मोपचार एवं आत्मदर्शन की श्रेष्ठ आध्यात्मिक विद्या है । योग व्यक्तित्व को वामन से विराट् बनाने की या समग्ररूप से स्वयं को रूपांतरित व विकसित करने की आध्यात्मिक विद्या है। योग मात्र एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति नहीं है, अपितु योग प्रयोग परिणामों पर आधारित एक ऐसा प्रमाण है जो व्याधि को निर्मूल करता है। अत: यह एक संपूर्ण विद्या का शरीर रोगों का नहीं, बल्कि मानस रोगों का भी चिकित्साशास्त्र है।'' वस्तुत:योग विज्ञान भौतिक भव संघर्षण और रोग- भोग से विमुक्त कर भगवत् प्रकाश से जीवन-जगत को प्रदीप्तमान करता है।

यह भारत के आर्य-सनातन वैदिक धर्म की एक मूलभूत आधारशिला है। इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक और विशद है । महर्षि पतंजलि ने इसके आठ स्वर्णिम सोपान बताए हैं -''यम, नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधयोऽष्टावगांनि' (योग सूत्र-२/२९) इसके अभाव में मानव जीवन कटु, घृणा, विद्वेष, भय, क्रोध, रोगों से उलझता हुआ अवसाद और जाड्यता की ओर बढ़ता जा रहा है। किंतु जब मानव इस अष्टांगयोग से अपने को समन्वित कर लेता है तब वह शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, लौकिक, पारलौकिक और आरोग्यता की अरूणाभ भूमि में आरोहण कर ऋद्धिमान हो जाता है। इसके कर्म कौशल, आसन, प्राणायाम, यम, नियम, सूक्ष्म धारणा ध्यान से रहित जीवन के भीतर बेचैनी, तनाव, अनिश्चय, कुंठा, कलह, संत्रास, संक्षोभ इत्यादि की ज्वालामुखी धधकने लगती है । इसी के दहनशील विस्फोटों का परिणाम है कि -''सारी दुनिया में १०० करोड़ व्यक्ति उच्च रक्त-चाप (हाइपरटेंशन) से पीड़ित है । हमारे देश में ७ करोड़ व्यक्ति उच्च रक्तचाप के रोगी हैं । देश के शहरी क्षेत्रों में २५ प्रतिशत तथा ग्रामीण क्षेत्र के १० प्रतिशत लोग उच्च रक्तचाप से ग्रस्त हैं। अध्ययन के अनुसार जब रक्तचाप लगातार १४०/९० मि०मी० मर्करी से ऊपर बना रहता है, तो उस स्थिति को उच्च रक्तचाप कहते हैं। यह ज्ञातव्य है कि मिस्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति गमाल अब्दुल नासिर (बावन वर्ष), पॉप संगीत के प्रणेता एलविस प्रेस्ली (बयालीस वर्ष), ब्रिटेन के राज्याध्यक्ष जॉर्ज षष्टम (छप्पनवर्ष), ऑपिरा संगीत गायिका मैरिया कैलास (तिरपनवर्ष), ये विश्व की महान हस्तियाँ हैं, जिन्हें उच्च रक्तचाप के कारण असमय ही अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा । उच्च रक्तचाप यह शब्द सुनकर कहीं आप भी सशंकित न हो जाएँ । घबराइए नहीं, उत्तेजना व आवेश में धैर्य न खो बैठिए। जरा समझदारी से काम लीजिए, आज ही अपने निजी डॉक्टर से अपने रक्तचाप की जाँच करवाइए। यदि रक्तचाप बढ़ गया है तो जल्दबाजी से काम न लें, चिंतित न हों, परेशान न हों, अपने डॉक्टरों की सलाह के अनुसार उसके निर्देशों का पालन करें। योगाचार्या श्रीमती सुधा शर्मा के अनुसार उच्च रक्तचाप के लिए शीतली, शीतकारी, भ्रामरी के साथ वज्रासन, शशकासन, शवासन, ताड़ासन तथा रक्तचाप (कम) के लिए मस्तकासन, वज्रासन के साथ नाड़ीशोधन' नियमित करने से अतिलाभ होता है।'' इन पंक्तियों के लेखक के अनुसार किसी भी सुखासन पर बैठकर 'भ्रामरी प्राणायाम'नियमित करने से रक्त संचार सही होता है और उच्चत रक्तचाप समाप्त हो जाता है तथा मन में एकाग्रता आ जाती है ।

योग विज्ञान आगामी समय के भाल पर विश्व-मानवता के नवोत्थान (वर्ल्डरिनेसां) और आध्यात्मिक क्रांति का प्रगतिशील विज़न प्रस्तुत कर रहा है, जो आज की म्रियमाण दुनिया को एक

बेहतरीन नव जीवन की नवउन्मेषित मधुरिमा की प्राणधारा को प्रवाहित कर रहा है। आज हमारे चारों ओर बर्बर त्रासदी, निराशा, अंधकार, कुटिल कुंठा और कुरूपता का पराजित ध्रुपद झंकृत हो रहा है, वहाँ योग विज्ञान सत्य, शिव, सौंदर्य और शाश्वत आनंद-उल्लास का ऋचा गान प्रस्तुत कर रहा है। भारत की शाश्वती पराचिण्मय प्रज्ञा और सांस्कृतिक अस्मिता को हमारे समय के नये परिप्रेक्ष्य में पुनराविष्कृत करने का प्राणवंत काम भी योग विज्ञान में हो सका है इसमें हम एक गहरी संपूर्ति और परितोषण का अनुभव करते हैं । इस प्रकार यह हमारी संस्कृति,अध्यात्म और चारू चिंतन -चेतना का एक पुरातन- सुदृढ़ अंग है । लेकिन परतंत्रता काल में हमारा योग विज्ञान हमारे ही आलस्य और प्रमाद के कारण कुछ विलुप्त-सा हो गया तथा इसमे भी आडंबर पनपने लगे, किंतु आज परमपूज्य योगऋषि रामदेवजी के सचमुच हम बड़े आभारी हैं कि इन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा प्रभा और सघन साधना से विलुप्त-गुप्त योग विज्ञान को किसान, मजदूर, अध्यापक, छात्र और साधारण लोगों के लिए सर्वसुलभ बना दिया। यह आज मजदूरों, किसानों की झोपड़ी से राजमहल, संसद भवन तथा पाश्चात्य देश तक, बड़े-बड़े बैंकों के अधिपतियों और मिल-मालिकों के हृदयहार बने हुए हैं। इसका अपना अक्षुण्ण महत्व है।

मो०-9162208005

संपर्क- हिंदी अध्यापक, संत फ्रांसिसा उच्च विद्यालय,
पो०-पोड़ैयाहाट,
जिला-गोड्डा 814153(झारखंड)

(पृष्ठ २६ का शेषांष)

आर्य अनार्य की परिभाषा

जो सच्चा ईश्वर भक्त अर्थात, निराकार, सर्वशाक्तिमान,सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर को मानने वाला हो जो ईश्वरीय वाणी वेदों को मानने वाला हो, जो पंच महायज्ञ का अनुगामी हो जो सदैव सत्य की रक्षा करने मे तत्पर रहता है, जो प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, अन्धविश्वासों को नहीं मानता हो जो सदैव दूसरों के कष्टों को दूर करने में अग्रणी रहता हो, जो पूर्वजों के सत्य मार्ग पर जीवन बिताता हो, वह आर्य है । और जो उक्त सभी तथ्यों को नहीं मानता हो वह अनार्य है । यही सन्देश वेदों मे, आर्य ग्रन्थों में दिया है ।

मानव समाज की सुखशान्ति का मार्ग केवल वैदिक मान्यताओं पर ही चलना है ।

यह एक सच्चाई है, कि छः हजार वर्षो से हमने वैदिक धर्म की उपेक्षा करके, अपने-अपने स्वार्थो को पूरा करने के लिये, अनेक मत मतान्तरो को बना कर अनैतिक चरम सीमा पार कर दी हैं और संसार मे अशान्ति, शत्रुता, अन्धविश्वास फैलाने में हम भारतीयों ने कोई कसर नहीं छोड़ी है । समाज में अशान्ति का कारण व शीत युद्ध का शनैः शनैः आगमन का कारण ही भविष्य में मानव सृष्टि के विनाश का कारण बनेगा यदि हम अपने को ईश्वर भक्त कहते हैं तो हमें ईश्वरीय नियम, सृष्टि क्रमानुसार वैज्ञानिक आधार पर धार्मिक, सामाजिक व स्वच्छ राजनीति को अपनाना ही होगा । और भारत में नाम के पीछे जातिवाचक शब्द को हटाना होगा । और प्रत्येक धार्मिक संगठन विशेष करके आर्य समाज को इस जातिवाद के भयंकर कैंसर से मुक्ति अपनो नाम के आगे उपजाति शब्द हटा कर एक नई पहल शुरू कर सकता है । आर्य संगठन को अब करवट लेनी ही पड़ेगी, क्योंकि समाज में तमाम बुराइयों को समाप्त करने में आर्यो को आगे आना ही होगा तथा अन्य समाज सुधार संगठन भी आगे आयें।

आर्य शब्द पर वाद विवाद क्यों ? यह अपवाद है । आर्य जातिवाचक शब्द नहीं है, अपितु गुणवाचक शब्द है ।

-पं० उम्मेद सिंह विशारद

ओ३म इन्द्रं बर्धन्तो अप्तुर: कृण्वन्तो विश्वमार्यम- ।
अपध्नन्तो अराव्ण:- ॥। ऋग्वेद

ऋग्वेद में ईश्वर ऋषियों द्वारा आदेश देते है कि सम्पूर्ण मानव जाति को आर्य अर्थात श्रेष्ठ बनावो। पहले स्वयं आर्य बनो, तभी संसार को आर्य बना सकते हो ।

आर्य समाज के संस्थापक युग पुरूष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अठारवीं शताब्दी में पुन: वेदों की ओर लौटाया, उन्होंने कहा कि सृष्टि प्रारम्भ से महाभारत काल तक सम्पूर्ण मानव समाज एक निराकार ईश्वर की पूजा करता था और वैदिक धर्म के संस्कार, संस्कृति व सभ्यता को अपनाता था।

महाभारत काल के बाद आर्य धर्म, आर्य संस्कृति, व आर्य सभ्यता, अवैदिक मार्ग पर भारतवासियों के चलने से आर्य शब्द अपवाद बनता गया । महर्षि दयानन्द जी ने एक सत्य समाज में रखा, उन्होंने महाभारत काल के बाद विदेशियों के गुलाम व सामन्तशाहियों की शोषण वृति व अवैदिक मार्ग को भारत का काल इतिहास बताया था । उन्होंने अनादि काल से महाभारत काल तक का इतिहास समाज के सामने रखा, और अन्धकार युग से प्रकाशयुग की तरफ मानव समाज को लौटाया । आइये कुछ विचार करते हैं ।

सृष्टि प्रारम्भ से महाभारत काल तक आर्यो का सांकेतिक इतिहास

सृष्टि प्रारम्भ मे वेद रचित ऋषियों के पश्चात् सबसे पहले आर्य राजा श्रीमान मनु जी हुए । मनु के सात पुत्र थे, जिनकी एक शाखा में आर्य भगीरथ, अंशुमान, दलीप और रघु आदि हुए और दूसरी शाखा में सत्यवादी आर्य हरिश्चन्द्र आदि हुए थे । आर्य राज वैवस्त मनु के पश्चात तत्कालीन् आर्य सूर्यवंश की ३९ पीढ़ियां बीत जाने के बाद आर्य मर्यादा पुरूष श्री राम आयोध्या में जन्म लेते है । मर्यादा पुरूषोत्तम आर्य श्रीराम के काल में तीन संस्कृति, का आगमन स्पष्ट देखा जा सकता है, एक आर्य संस्कृति, द्वतीय वानर संस्कृति, तृतीय राक्षस संस्कृति का आगमन शुरू हो गया था । प्रारम्भ में केवल एक ही वंश था, बाद में कालचक्र से विभिन्न संस्कृति फैलती गयी । विशेष बात यह है कि तीनों ही वैदिक संस्कृति को मानते थे । तीनों में ही वेदों के अध्ययन की परम्परा थी । ३९ पीढ़ियों तक एक ही वंश का संसार में राज्य था ।

श्रीराम के युग में स्पष्ट देखने में आता है कि तीन विचार धाराओं ने जन्म ले लिया था । और तीनों संस्कृति के तीन केन्द्र बन गये थे । आर्य संस्कृति का केन्द्र अयोध्या था, वानर संस्कृति का केन्द्र किष्किन्धा था, और राक्षस, संस्कृति का केन्द्र श्रीलंका में था । वानरो की पूँछ होने की कल्पना हैं जबकि बानर अयोध्या वासियों की तरह वैदिक संस्कारों पर चलते थे । वानर शब्द का अर्थ पूँछ वाले वानर नहीं है अपितु वनों में रहने के कारण वानर नाम पड़ा था । वैसे राक्षस भी मनुष्यों की तरह थे । आर्य समाज, तपस्या और वैदिक विद्या के अनुसार वर्णो और आश्रमों की मर्यादा का पालन करते थें और राक्षस लोग तो निश्चत रूप से खावो, पियो मौज उड़ावो,भोग आदि व स्वेच्छाचारी, संस्कृति व संस्कारो के प्रतीक थे । वानर संस्कृति दोनों के बीच की रही थी, किन्तु वानर संस्कृति का रुझान आर्य

संस्कृति के तरफ था । और आर्य संस्कृति की उपेक्षा के कारण शनै: शन्नै: अनैतिकता की खाई मे गिरते गये ,और आर्य नैतिकता के उच्च आदर्शो तक नहीं पहुंच पाये । आर्य संस्कृति व वानर संस्कृति यज्ञ प्रधान थी और राक्षस संस्कृति हिंसा परायण थी । किन्तु तीनों समुदाय वेदों को ही धर्म मानते थे और वैदिक संस्कारों पर चलते थे ।

आर्यावर्त (भारत) में अन्धेर युग का प्रारम्भ

श्री आर्य मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के पश्चात् तीनों संस्कृति में केवल दो विचार धारायें आर्यावृत में चलने लगी थी, आर्य और अनार्य, अर्थात देवता और राक्षस समुदाय का आपस में संघर्ष प्रारम्भ हुआ, और दोनों ही समुदाय अपने को बचाने के लिये आपस मे युद्ध करने लगे । शनै: शनै: काल चक्र घूमता गया, और देव संस्कृति घटने लगी और राक्षस संस्कृति बढ़ने लगी । महाभारत काल के एक हजार वर्ष पूर्व से आर्य संस्कृति में गिरावट आने लगी और राक्षस विचार धारायें पनपने लगी । और महाभारत काल के पश्चात से आज विश्व में राक्षस प्रवृत्ति चरम सीमा पर पहुंच गयी हैं आप स्वंय विचार कीजियेगा । आइए अब हम आर्य शब्द के अपवाद पर विचार करते है ।

उत्तराखण्ड में आर्य शब्द पर जातिवाद का अपवाद

देवभूमि उत्तराखण्ड में जातिवाद चरम सीमा पर हैं। और आर्य शब्द को अनुसूचित जाति का समझा जा रहा है । और जो भी नाम के आगे आर्य लगाता है, उसको छोटी जाति का समझा जा रहा है । क्योंकि देवभूमि उत्तराखण्ड पर भी राक्षस प्रवृत्ति की विचार धारायें होने के कारण वेदों के ज्ञान के अभाव में, वैदिक संस्कारो के अभाव में, जातिवाद, छुआ-छूत, ऊंच-नीच चरम सीमा पर अग्रसर हो रखा हैं फलस्वरुप स्वयं को ऊंची जाति बतलाने वाले अधिकांश अपने मूल को ही नहीं जानते हैं, और अपने नाम के आगे काल्पनिक जाति शब्द लगा कर, अपने को ऊँचा बताते है और आर्य शब्द व आर्य समाज संगठन को नीचा मानते है ।

मैं उत्तराखण्ड की ऊंची जाति वालों से आग्रह करूंगा कि अपनी पन्द्रह बीस पीढ़ियों की उत्पत्ति का इतिहास तो जानिये । आप पायेंगे कि जाति के आगे उपजाति मनुष्यों द्वारा बनाया गया है । बस यही नाम के पीछे कथित जाति वाचक शब्द सब अहंकार व समाज को बांटने की प्रक्रिया है । और अपने अपने को ऊंचा मानना, दूसरे गरीब को नीचा माना ही ईश्वर की दृष्टि में महापाप है।

धन्य हो महर्षि दयानन्द जी आपने सबको जगा दिया, आपने थोथी जातिवाद, धर्मवाद, समाजवाद व राजनीतवाद को सम्पूर्ण भारत में एक तरफ से नकार दिया था और आर्य समाज वैचारिक क्रान्ति का संगठन खोलकर सदैव के लिये, ज्ञान का प्रकाश पुंज जला दिया । आर्य शब्द जाति वाचक नहीं है अपितु श्रेष्ठ गुणवाचक हैं।

भारत के इतिहास में आर्य जाति बाहर से आई एक सफेद झुठ है

पराधीन भारत में अंग्रेजों ने सर्वप्रथम यह समझा आर्य संगठन, सच्चा ईश्वर भक्त व धार्मिक संगठन व समाजवादी है । इसका प्रभाव भारत पर कम करना चाहिए और आर्य समाजी बदल गये तो हमारी पश्चिमी संस्कृति भारत में फल फूल सकी है । इसलिये लार्ड मैकाले ने शिक्षा के कोषों मे यह गलत लिखवा दिया कि आर्य बाहर से आये थे और भारत पर काबिज हो गये । यह सफेद झूठ था और भारत आजादी के बाद भी उस इतिहास के पन्नों को नहीं मिटा सका है ।

(शेषांष पृष्ठ २४ पर)

आर्य समाज कलकत्ता के प्रकाशन

पुस्तक विक्रेता, आर्य संस्थाओं, उपदेशकों को ४० प्रतिशत की छूट दी जाती है।

पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	मूल्य
१. युग निर्माता सत्यार्थ प्रकाश-संदर्भ दर्पण (ऐतिहासिक संदर्भ में सत्यार्थ प्रकाश की यात्रा का दस्तावेज)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७०.००
२. स्वामी दयानन्द का राजनीति दर्शन (स्वामी दयानन्द के राजनीत दर्शन का समीक्षात्मक अध्ययन)	डॉ० लाल साहेब सिंह	५०.००
३. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज की देन (उन्नीस उत्कृष्ट निबंधों का संग्रह)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय द्वारा सम्पादित	१५.००
४. त्रैतवाद का उद्भव और विकास (त्रैतवाद का उसके उद्भव और विकास के वैशिष्ट्य को स्पष्ट करने वाला दर्शन का शोधपूर्ण ग्रंथ)	डॉ० योगेन्द्र कुमार शास्त्री	२०.००
५. उपनिषद् रहस्य (ईश केन और प्रश्न उपनिषदों की सारगर्भित व्याख्या)	महात्मा नारायण स्वामी ''सरस्वती''	२०.००
६. श्री श्री दयानन्द चरित	श्री सत्यबन्धुदास	१०.००
७. महर्षि दयानन्द की देन (निबन्धों का संग्रह)	आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा प्रकाशित	३०.००
८. धर्मवीर पं० लेखराम	स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती	५०.००
९. आनन्द संग्रह (स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के उपदेशामृत)	वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज	२५.००
१०. भाई परमानन्द (बलिदानी वंश के कुलदीपक की अमर कहानी)	श्री बनारसी सिंह	१०.००
११. धर्म का आदि स्त्रोत	पं० गंगाप्रसाद जी	३०.००
१२. संकल्प सिद्धि (विचारों के संकल्प विकल्प का अनोखा चिन्तन)	स्वामी ज्ञानाश्रम	३०.००
१३. ज्योतिर्मय (श्रीयुत् टी. एल. वास्वानी द्वारा लिखित (Torch Bearer)) का हिन्दी अनुवाद	टी॰एल॰ वास्वानी	३०.००
१४. वेद-वैभव	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१५०.००
१५. कर्मकाण्ड	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१०.००
१६. स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज का योगदान	ले० सत्यप्रिय शास्त्री	५०.००
१७. आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	८०.००
१८. मेरे पिता	इन्द्र विद्यावाचस्पति	५०.००
१९. वेद और स्वामी दयानन्द	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	४०.००
२०. व्यतीत के यश की धरोहर (महासम्मेलनों के संस्मरणात्मक आकलन)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	६०.००
२१. Torch Bearer	टी० एल० वास्वानी	३५.००
२२. पं० गुरुदत्त लेखावली	मुनिवर पं० गुरुदत्तजी 'विद्यार्थी'	२५.००
२३. प्रार्थना प्रवचन	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	५०.००
२४. सन्ध्यारहस्य एवं संन्ध्या अष्टांग योग	प्रो० चमूपति एवं स्व० आत्मानन्द (एक जिल्द)	३०.००
२५. बंगाल शास्त्रार्थ	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	४०.००
२६. वेद में गोरक्षा या गोवध	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	५.००
२७. वेद रहस्य	महात्मा नारायण स्वामी जी	३५.००
२८. वेद वन्दन	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१६०.००
२९. राज प्रजाधर्म प्रबोधभाष्य	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७०.००
३०. वेद-वीथिका	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१६०.००

(शेष पृष्ठ १० पर)

४२ वाँ अन्तर्राष्ट्रीय कलकता पुस्तक मेला

३१ जनवरी २०१८ से ११ फरवरी २०१८ सेन्ट्रल पार्क साल्टलेक कलकता प्रतिनिधि मे स्टाल नं ४७१, Gate No. 3 में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा मे प्रयास से आर्यसमाज कलकता, आर्य समाज बड़ावाजार, आर्यसमाज हावडा, आर्यसमाज आसनसोल के सहयोग से वैदिक साहित्य का प्रचार किया गया । पुस्तक मेले में २८००० मूल्य का 200 थ बिका । पुस्तक मेले में श्री सुरेश अग्रवाल, तथा कार्यकर्ता सिद्धार्थ जायसवाल, अरविन्द सेठ, विरेश आर्य, कृष्णा जायसवाल का सहयोग रहा ।

(पृष्ठ १३ का शेषांष)

१९९६ के नवम्बर माह में प्रचार कार्य के इसी क्रम में आप हरियाणा गए और देर रात दिल्ली वापस लौटे। अगली ही सुबह, ७ नवम्बर १९९६ को अकस्मात् हृदय-गति रुक जाने से आपका भौतिक शरीर शांत हो गया। डॉक्टर को बुलाने का भी अवसर नहीं मिला । आर्य जगत, विशेषकर दिल्ली और उत्तर भारत में शोक की लहर दौड़ गयी । असमय और अचानक हुयी इस अपूरणीय क्षति से समाज और परिवार स्तब्ध था किन्तु शायद यही विधि का विधान था ।

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित । मो. : ९८३०३७०४६३